HANS SHODH SUDHA , Vol. 1, Issue. 1, (2020) pp. 125-128

उत्तर प्रदेश का प्रचलित लोक गीत 'कजरी' - विषय वैविध्य एवं समकालीन प्रभाव

(मिर्जापुरी, बनारसी व अवधी के विशेष संदर्भ में)

अपराजिता

"लोकगीत किसी संस्कृति के मुँह बोलते चित्र हैं" - डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल सृष्टि के आरम्भ से ही मानव प्रकृति की सुकुमारता और लावण्य पर मुग्ध हो तद्नुरूप भावाभिव्यक्ति करता आ रहा है। लोकजीवन और प्रकृति का प्रारम्भ से ही घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है, प्रकृति के आँगन में लोक का स्वच्छंद विचरण होता है। ग्रीष्म ऋतु में सूर्य का प्रचंड आतप जहाँ सबको व्याकुल कर देता है, वहीं शिशिर की शीतल मंद बयार सम्पूर्ण वातावरण में उल्लास तथा वसंत ऋतु का सुधामयी चन्दा मानव की कल्पनाओं में माधुर्य बिखेर देता है।

भारत में विभिन्न प्रकार की ऋतुओं का संगम है। यह संगम यहाँ के लोकगीतों में ही नहीं अपितु लोककलाओं, लोकनृत्यों, आदि सभी में देखने को मिलता है। प्रकृति के दिए इस वरदान को उल्लासपूर्वक मनाने की परम्परा भारत में प्राचीन काल से ही रही है। भारत में ऋतु के अनुसार न केवल गीत के कथ्य बदलते हैं, बल्कि उनके शिल्प में भी परिवर्तन आता है। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय इस बात को विस्तार देते हुए कहते हैं- यदि वर्षा के दिनों में किसान आल्हा गाकर अपना मनोरंजन करता है तो सावन में कजरी गाकर अपने दर्द को दूर करता है, यदि फागुन के महीने में होली या फागुन के गीतों द्वारा वह अपने हृदयगत उल्लास को प्रकट करता है तो चैत में चैता या घांटों गाकर वह आत्म विभोर हो जाता है।

ऋतु वर्णन की लिखित परम्परा वैदिक साहित्य में ऋतुओं और महीनों की गणना तथा ऋतु विशेष के स्वामी के वर्णन से प्रारम्भ होती है। इतना ही नहीं हिन्दी साहित्य के आदिकालीन ग्रन्थों में भी ऋतु वर्णन की यह परंपरा दृष्टिगत होती है। भक्तिकालीन साहित्य की दोनों धाराओं (निर्गुण सगुण) में भी ऋतु वर्णन की यह परम्परा विद्यमान है। रीतिकालीन साहित्य में भी श्रृंगार रस के उद्दीपन भाव हेतु ऋतु वर्णन किया गया।[1]

ऋतुगीतों की यह परम्परा लोकभाषाओं में अधिक मुखर हुई है। अवध ब्रज एवं भोजपुरी भाषी क्षेत्रों में ऋतुओं की मनोहारी सुषमा तथा मानव मन पर पड़ने वाले विविध प्रभावों का चित्रण ऋतुगीतों में प्राप्त है। उपलब्ध ऋतुगीतों को दो भागों - वर्षा ऋतु के गीत व वसंत ऋतु के गीत में वर्गीकृत किया जा सकता है। प्रथम प्रकार के गीतों में कजरी, बारहमासा, छःमासा, चौमासा, मल्हार, झूला, हिंडोला, सावन, चौहट, आल्हा, चाँचर और रोपाई गीतों की गणना की जाती है। दूसरे प्रकार के गीत वसंत ऋतु में गाये जाते हैं। जिनमें कोयल की कूक, वृक्षों में पुष्पागमन, होली का उल्लास, कामाधिक्य आदि का वर्णन होता है। होली, धमार, कबीर, जोगिया, फाग, चैता या चैती वसंत कालीन ऋतु गीत है।[2] अर्थात कजरी को हम ऋतुगीत की संज्ञा दे सकते हैं। ऋतुगीत इसलिए क्योंकि यह प्रमुख रूप से सावन महीने में गाया जाने वाला लोकगीत है। हालांकि विषय की विविधता की दृष्टि से यह कई रूपों में सम्पन्न है परन्तु सावन और उससे जुड़े विषयों का मनमोहक और यथार्थ चित्रण इसमें देखने को मिलता है।

ऋतु गीतों ही नहीं बल्कि समस्त लोकगीत में ''कजरी'' गीतों का विशेष स्थान है। लोकप्रियता एवं चारुता के आधार पर 'कजरी' गीतों को ''वर्षाकालीन गीतों की रानी'' कहा जा सकता है।[3] वर्षा ऋतु के विभिन्न उपादानों बादलों का उमड़ना, गर्जना, विद्युत की चमक, वर्षा की झड़ी, झंझावातों का चलना, दादुर, मोर, पपीहा, आदि का उल्लासमय ध्वनियों का बहुविधि वर्णन इसके अंतर्गत होता है। ऐसे ही मनोरम वातावरण में कजरी गीतों का गायन किया जाता है।

कजरी गीतों की उत्पत्ति कब और कैसे हुई इस सम्बन्ध में कोई ठोक तथ्य तो प्राप्त नहीं हैं, परन्तु इस उत्पत्ति से अलग-अलग क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न किंवदंतियाँ अवश्य जुड़ी हुई हैं। ''लोक साहित्य के कुछ विद्वान कजरी के जन्म का सम्बन्ध मिर्जापुर व बनारस में प्रचलित शक्तिपूजा या गौरीपूजा तथा

अपराजिता, पीएच.डी. शोध छात्रा, कला एवं शिल्प महाविद्यालय, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
610/104, केशवनगर, लखनऊ। ई-मेल—aprajitatripathi1993@gmail.com

वैष्णव इसे विशेष रूप से कृष्णोपासना या लावणी से जोड़ते हैं। मिर्जापुर के कुछ गायक कजरी को अष्टभुजी विंध्याचल की देन मानते हैं। उनके अनुसार काली कज्जली के चार रूपों, काली, दुर्गा, विंध्याचल की अष्टभुजी और मैहर की मनियादेवी के द्वारा व्यक्त भाव कजली द्वारा गाये गए, अत: 'कजली' के नाम से प्रसिद्ध हुए।[4] पंडित बलदेव उपाध्याय के अनुसार–''आज कल की कजली प्राचीन लावणी की ही प्रतिनिधि है।''[5]

'कजरी' पूर्वी उत्तर प्रदेश और भोजपुरी से जुड़े हुए कुछ क्षेत्रों का सावन के महीने में गाया जाने वाला प्रसिद्ध लोकगायन है। उत्तर प्रदेश में मुख्य रूप से कजरी की शैली दो प्रकार की मानी जा सकती है। एक को गजल की शक्ल में कजरी दंगलों में सुना जा सकता है। दूसरी और दूनमुनिया कजरी, जिसे औरतें वृत्त बनाकर ताल देती हुई झुक-झुक कर गाती हैं।[6] चूंकि लय लोकगीतों की आत्मा होती है अत: लय के आधार पर इसे चार भागों में देखा जा सकता है 'ठहकी लय, ठुनठुनिया लय, चलती लय, रामाहरी लय। कजरी के विषय प्रमुखत: परम्परागत होते हैं और अपने समकालीन लोकजीवन का दर्शन कराने वाले भी। अधिकतर कजरियों में शृंगार रस की प्रधानता होती है। कजरी के वर्ण्य विषय ने जहाँ एक ओर भोजपुरी के संत कवि लक्ष्मीसखी, रसिक किशोरी, आदि को प्रभावित किया वहीं अमीर सुखरो, बहादुरशाह जफर, सुप्रसिद्ध शायर सैय्यद अली मुहम्मद 'शाद', हिन्दी के कवि अंबिका दत्त व्यास, श्रीधर पाठक, द्विज बलदेव, बदरीनारायण उपाध्याय 'प्रेमघन' आदि भी कजरी के आकर्षण से मुक्त नहीं रह सके।[7] यहाँ तक कि भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने भी अनेक कजरियों की रचना कर लोक विधा से हिन्दी साहित्य को सुसज्जित किया। भारतेन्दु हरिश्चंद्र जी का समय कजरी का 'स्वर्ण युग' था। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने कजरी के गिरते हुए स्तर को संवर्धित करते हुए संगीत और लोकजीवन में सर्वोच्च स्थान दिलाते हुए उसका पुनर्प्रतिष्ठापन किया।[8]

कजरी गीत का एक प्राचीन उदाहरण तेरहवीं शताब्दी का, आज भी न केवल उपलब्ध है बल्कि गायक कलाकार इसको अपनी प्रस्तुतियों में प्रमुख स्थान भी देते हैं। यह कजरी, अमीर खुसरो की बहुप्रचलित रचना है, जिसकी पंक्तियाँ हैं[9] –

''अम्मा मेरे बाबा को भेजो री कि सावन आया''

भारत में अंतिम मुगल बादशाह बहादुरशाह जफर की एक रचना– ''झूला किन डारों रे अमरइयाँ''..... भी बेहद प्रचलित है। जैसा कि उपरोक्त प्रारम्भिक उदाहरणों से यह प्रतीत होता है कि कजरी की विषय यात्रा का आरम्भ प्रमुखत: सावन ऋतु से होता है परन्तु इस लोकगीत की दीर्घ यात्रा में इसके कई रूपों में दर्शन हमें होते हैं। सावन के ऋतु शृंगार से सजी नायिका के प्रेम, उल्लास, विरह, दु:ख एवं चंचलता का मनोहारी वर्णन करते हुए यह सामाजिक रिश्तों, धार्मिक आस्थाओं को सहेजती अपने समकालीन विषयों को भी प्रतिबिम्बित करती है। यहाँ पारंपरिक शृंगार रस के भाव का उद्दीपन करती अवधी कजरी का एक उदाहरण निम्नवत है जहाँ एक कजरी गीत में नायक द्वारा नायिका के साज ओ शृंगार की प्रशंसा करते हुए समागम हेतु उससे स्वयं आकर मिलने की प्रार्थना की गई है[10] –

"अरे रामा बरसत रिमझिम पनिया चली तो आवो जनिया एहारी।

तुम्हरे सिर के बार हैं कारे बीच मोतियाँ मांग सँवारे हो रामा।

अरे रामा चोटी में लगी झुनझुनिया चली तो आवो जनिया ए हारी।

कड़ा छड़ा पाजेब बिराजै बिछुवन कै झनकारी हो रामा।

अरे रामा कमर परी करधनिया चली तो आवो जनिया ए हारी।"

आमतौर पर कजरियाँ – 'जैतसार','ठुनठुनियाँ','खेमटा', 'बनारसी', और मिर्जापुरी धुनों के नाम से पहचानी जाती हैं। कजरियों की पहचान उनके टेक के शब्दों से भी होती है पारंपरिक कजरियों की धुनें व टेक निर्धारित होते हैं। मुख्यत: कजरियों में टेक इस प्रकार होते हैं – 'रामा', 'बलमू', 'सांवर गोरिया', 'ललना', 'ननदी', 'ए हारी', आदि। बनारसी कजरी गीत का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है जिसमें नायिका द्वारा मेहंदी लाने के लिए नायक से आग्रह करना तथा ननद से उसे पिसवा कर प्रियतम से ही लगा देने का अनुरोध किया गया है –

पिया मेहंदी लियाय दा मोतीझील ते, जाके सायकील ते न।
पिया मेहंदी ले आऊ, छोटकी ननद से पिसाऊ
अपने हथवा से लगावा काटा कील से, जाके सायकील ते ना।
ई ह सावनी बहार, बात कही न हमार
कौनो फाइदा न निकली दलील ते, जाके सायकील ते ना

वहीं एक अन्य कजरी गीत के उदाहरण में पति के विदेश से सौतन लाने की आशंका प्रकट करती है जिससे स्त्रियों की मध्यकालीन दुर्दशा व बहुपत्नी प्रथा के प्रचलन का ज्ञान होता है। नायक द्वारा रोजगार की तलाश में विदेश जाने और उसकी व्यथा के विषय को भी कजरी गीतों में स्थान दिया गया है, सम्बन्धित गीत इस प्रकार है –

धनी हो खोला न केंवरिया हम बीदेसवा जईबे ना।
जऊ मोरे सइयाँ तुम जईहों बिदेसवा तानी तू एतना कर देऊ ना।

की हमरे भैया को बुलवाय देऊ हम नैहरवा रहबे ना।

गए बिऊ बिदेसवा ए धनिया, कैसे होई गुजारा न रानी।

रुपैया कमाके आऊबे तोहका झुलनी नीक गढ़ऊबे, हम बीदेसवा....।

जईहों तू बिदेसवा कऊनिउ सवतिनिया लइ अइहो ए सइया

अब हम कुछ ना सुनबै बतिया हमरा भैया के बुलवाय देऊ, हम नैहरवा..।

हम तऊ तोहरे खातिर जनिया, जाऊ बिदेसवा ओ धनिया।

अब हम घर ही रहबै ना, तू जईहौ नैहरवा ना हम बिदेसवा जईबे ना।

नायक की व्यथा, नायिका का प्रेम, सावन ऋतु में श्रृंगार तथा विरह का अद्‌भुत संगम पारिवारिक रिश्तों में नोकझोक के सुन्दर चित्रण के साथ सामाजिक, धार्मिक आर्थिक स्थितियों का भी यथार्थ और प्रभावी चित्रण लोकभाषाओं से सजे इन लोकगीतों में देखने को मिलता है। उपरोक्त कजरी गीत जिसमें देश में रोजगार दयनीय दशा और कमाई हेतु विदेश गमन का संकेत मिलता है, जो अत्यंत प्रभावपूर्ण है।

विभिन्न क्षेत्र की कजरियों के इस क्रम में अवधी कजरी की अपनी अलग ही विशेषता होती है। कजरी का प्रधान विषय प्रेम है। इसमें श्रृंगार रस के दोनों पक्षों की झांकी देखने को मिलती है, परन्तु संयोग श्रृंगार की प्रधानता होती है। लोक संस्कृति में कई प्रकार के रीति-रिवाजों को मनाने का प्रचलन होता है। अवध में वर्षा ऋतु के दिनों में नव-विवाहिता वधु कजली खेलने के लिए अपने मायके जाती है, परन्तु यहाँ पत्नी द्वारा मायके न जाकर ससुराल में ही पति संग रहने का नायिका का सुन्दर आग्रह दिखता है जो कि अवधी कजरी की विषयगत सुंदरता है। गीत इस प्रकार है -

चाहे भैया रूठें चाहे जाएँ, सावना में नाहि जईबे ननदी।

मगही पतईया के बिड़वा मंगौली, चाहे भैया राचें चाहे जाएँ.....सावनवा में...।

अरे गिन चुन कलियन सेज बिछाया, चाहे भैया सोवें चाहे जाएँ...सावनवा में।

इसके अन्यत्र कजरी में अनेक समकालीन विषयों का भी बहुत गहरा प्रभाव दृष्टिगत होता है। समकालीन कजरी एक उदाहरण हमें ब्रिटिश काल में देखने को मिलता है। ब्रिटिश शासनकाल में अनेक लोकगीतकारों ने ऐसी राष्ट्रवादी कजरियों की रचना की जिनसे तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने कठोर यातनाएँ भी दीं। परन्तु प्रतिबंध के बावजूद लोकपरम्पराएँ जन-जन तक पहुँचती रहीं। इन विषयों पर रची गई अनेक कजरियों में बलिदानियों को नमन और महात्मा गाँधी के सिद्धान्तों को रेखांकित किया गया। ऐसी ही एक कजरी की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

"चरखा कातो मानो गांधी जी की बतियाँ, बिपतिया कटि जइहें ननदी"[11]

वहीं कुछ अन्य कजरियों में अंग्रेजों की दमनकारी नीतियों पर भी प्रहार किया गया।

"कइसे खेले जाइबू सावन में कजरिया बदरिया घेरी आइल ननदी"।

इन पंक्तियों में काले बादलों का घिरना गुलाम के प्रतीक के रूप में चित्रित हुआ है। इसके अंतरे की पंक्तियाँ कुछ इस प्रकार से हैं -

"केतनों लाठी गोली खाइलें, केतनों डामन (अंडमान का अपभ्रंश) फांसी चढ़िले केतनों पीसत होइहें जेहल में चकरिया, बदरिया घेरि आइल ननदी।"

आजादी के बाद कजरी गायकों ने इस अंतरे को परिवर्तित कर दिया। 1857 की क्रांति के पश्चात् जिन जीवित लोगों से अंग्रेजी हुकूमत को ज्यादा खतरा महसूस हुआ, उन्हें काला पानी की सजा दे दी गयी। इस व्यथा को भी लोकगीतों में व्यक्त किया गया और कजरी में यह समकालीन विषय के प्रभाव के रूप में दिखाई देता है -

"अरे रामा नागर नैया जाला काले पनिया रे हारी
सबकर नैया जाला कासी हो बिसेसर रामा
नागर नैया जाला काले पनियाँ रे हारी
घरवा में रोवै नागर, माई बहिनियाँ रामा।
'सेजिया पै रोवे बारी धनिया रे हारी।"[12]

लोकगीत निश्चित ही एक सशक्त विधा है समय को सहेजने, संस्कृतियों को समेटने की। परन्तु समय के साथ हो रहे त्वरित परिवर्तनों ने हमारी लोककलाओं को भी प्रभावित किया है। चाहे वह लोकगीत हो, कला हो या अन्य कोई लोकविधा सामाजिक सरोकारों की श्रेणी में पिछड़ते जा रहे हैं। पूर्व में संयुक्त परिवारों के नेतृत्व में हमारी परम्पराएँ मौखिक रूप में ही बड़े बुजुर्गों से नई पीढ़ी में सहज ही अग्रसारित हो जाते थे परन्तु अब एकल परिवारों की बढ़ती सभ्यता के फलस्वरूप भी यह परम्परा क्षीण होती जा रही है। वहीं बढ़ती शहरी संस्कृति में और सभ्य व संभ्रांत होने की लालसा ने हमने अवश्य ही तकनीक और विज्ञान से और समृद्धता प्रदान की है परन्तु अपनी जड़ों को छोड़कर कोई विशाल वृक्ष भी पल्लवित और पुष्पित नहीं हो सकता। यदि लोक संस्कृतियों को हम अपनी संस्कृति की बुनियाद

कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। अत: बुनियाद के अभाव में किसी भी भवन का निर्माण व्यर्थ है, ऐसे निर्माण का कोई भविष्य नहीं। कजरी लोकगीतों का स्वरूप वर्तमान में काफी बदला है या यूँ कहें कि बदलते हुए परिवेश से हमारी कजरी भी प्रभावित हुई है।

ऋतु प्रधान लोकगायन की शैली कजरी का फिल्मों में भी प्रयोग किया जाने लगा है। हालाँकि हिन्दी फिल्मों में कजरी का मौलिक रूप कम मिलता है, किन्तु 1963 में प्रदर्शित भोजपुरी फिल्म 'बिदेसिया' में इस शैली का अत्यंत मौलिक रूप में प्रयोग किया गया। इस कजरी गीत की रचना अपने समय के जाने माने लोकगीतकार राममूर्ति चतुर्वेदी ने की थी और इसे संगीत बद्ध किया एस0एन0 त्रिपाठी ने। यह गीत महिलाओं द्वारा समूह में गाई जाने वाली टूनमुनिया कजरी की शैली में मौलिकता को बरकरार रखते हुए प्रस्तुत किया गया। इस कजरी गीत को गायिका गीता दत्त और कौमुदी मजूमदार ने अपने स्वरों से फिल्मों में कजरी के प्रयोग को मौलिक स्वरूप प्रदान किया था। इसके अतिरिक्त फिल्मी गीतों में कजरी शैली से प्रभावित होकर कई गीतों की रचना की गई।

देसी वाद्य यंत्रों के साथ गाई जाने वाली कजरी अब आधुनिक वाद्य यंत्रों के साथ गाई जा रही है। परन्तु हमारी इस लोकसंस्कृति की मौलिकता को बरकरार रखते हुए नए प्रयोग करने की आवश्यकता है ताकि आने वाली पीढ़ी इनके प्रति जागृत हो और अपनी संस्कृति और लोक परम्पराओं को अपनाए जिससे ये लोक परम्पराएँ युगों-युगों तक जीवित रह सकें।

संदर्भ सूची

1. पाण्डेय जगदीश प्रसाद, अवधी ग्रंथावली, खण्ड एक, पृष्ठ -126
2. वही, पृष्ठ-125
3. वही, पृष्ठ-124
4. वही, पृष्ठ-125
5. डॉ. जैन शांति, "लोकगीतों के संदर्भ और आयाम", पृष्ठ-193
6. http://m.bharatdiscovery.orgèindia/: E0: A4:95:E0:A4: 9c:E0:A4:B0:E0:A5%80? page=3
7. सिन्हा दया प्रकाश लोकरंग उ.प्र., पृष्ठ-100
8. वही।
9. http://m.bharatdiscovery.org/india/: E0: A4:95:E0:A4:9c: E0:A4:B0:E0:A5:80? page=3
10. वही।
11. http://radioplaybackindia.blogspot.com/2015/ 08swargoshthi-231-folk-kajari.html';
12. वही।